IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 9, 2022

डॉ. अंजू
शोध निर्देशिका
हिन्दी विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

प्रिया शर्मा
शोधार्थी, हिंदी साहित्य
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

वर्तमान युग में स्त्री विमर्श : एक अध्ययन

स्त्री–विमर्श' आज केवल साहित्य जगत में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण समाज के हर हिस्से में अपने–अपने स्तर एवं आवश्यकतानुसार हो रहा है। साहित्य गद्य विद्या कहानी में हो रहा आज का 'स्त्री–विमर्श' हमारी बौद्धितकता में झनझनाहट उत्पन्न कर रहा है। गद्य विद्या कहानी के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डाले तो यह बहुत प्राचीन नहीं है। इसका प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चात् पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव एवं सामाजिक आवश्यकता के कारण हुआ है। यद्यपि इससे पूर्व भी इसका अस्तित्व था, पर वह गल्प या फैन्टसी ही हुआ करता था। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद से कहानी आदर्शबाद से होती हुई यथार्थ की ओर मुड़ी है। समकालीन कहानी यथार्थ के धरातल पर ही पूर्णतः खड़ी है। पर आदर्श और यचार्य के मध्य की यह समकालीन कहानी की यात्रा प्रेमचन्द पूर्व युग, प्रेमचन्द युग एवं प्रेमचन्दोत्तर युगों में विभक्त है। जिनमें स्त्री और उससे सरोकार रखने वाली समस्याओं का अंकन युगानुरूप हुआ है।

आज विविध क्षेत्रों में हो रहे हो रहे स्त्री शोषण, बलात्कार, सती प्रथा, विधवा समस्या को स्त्री गलती, कर्तव्य उसका भाग्य या पाप की श्रेणी में न रखकर निदानपरक दृ ष्टिकोण से निदान प्रस्तुत होने चाहिए। बलात्कार होने के बाद स्त्री स्वयं अपनी नजरों में खुद को गिरा हुआ महसूस करने लगती है, जबकि 'बलात्कार' के लिए वह कतई दोषी नहीं होती है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है। यहाँ कोख की शुचिता तो महत्व रखती है पर दोषी को कोई नहीं पूछता। बलात्कार का होना इज्जत का जाना माना जाता है, दुर्घटना या अन्याय नहीं। अतः स्त्रीहीनता से ग्रस्त हो जाती है। खुद शर्मिदा होती है। कुंवारी हो तो विवाह की समस्या आड़े आ जाती है, कोई हाथ थामने वाला आगे नहीं बढ़ता है और विवाहिता हो तो पति परिवार सभी उससे एक दूरी सी बना लेती है उसे हर क्षण ये एहसास दिलाते हैं कि उसके साथ अनहोनी घटी, वह अपवित्र हो गई है, दोषी है और यदि विधवा स्त्री हो तो फिर कहना ही क्या की उसकी स्थिति होगी। विधवा स्त्री एक तो ऐसे ही तरह–तरह के लांछन सहती है, कष्ट झेलती है। वैव्य उसके ही पूर्व जन्मों की सजा माना जाता है। आज का सभ्य सुशिक्षित समाज भी दबे स्वरों में कही न कही ऐसा ही मानता है। उस पर से बलात्कार का घटित होना भी उसी की गलती की श्रेणी में ही गिना जाता है। समाज में वह और घृणित नजरों से देखी जाती है। कभी–कभी तो स्त्रियाँ विवश होकर आत्महत्या तक कर लेती है।

स्वतंत्रता पश्चात यद्यपि कानून ने स्त्रियों को काफी सहारा दिया है। उन्हें कई तरह के आरक्षण एवं अधिकार दिये हैं। पर वे आज किसी और ही रूप में अमल में आ रहे हैं। आज गांव से लेकर शहरों यहाँ तक की दिल्ली जैसे महानगरों तक मैं स्त्रियों को मिल` आरक्षण को ट्रम्प कार्ड की तरह खेला जा रहा है। कहीं वह आगे और पर्दे के पीछे पतिदेव है तो कही राजनीतिक दल स्त्रियों के आरक्षण का भरपूर फायदा उठाकर

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

सीटों को अपने हक में कर रहे हैं। स्त्री–आरक्षण का फायदा केवल चुनावों में ही नहीं बल्कि नौकरी आद सभी जगह हो रहा है। स्त्री आरक्षण भी शोषण को माध्यम ही बनता जा रहा है। अब तक तो धर्म, परम्परा आदि के नाम पर ही स्त्रियाँ छली जाती रही थी पर अब ये आरक्षण। बड़ी ही सहजता से उनमें ये बात कूट–कूटकर भर दी जाती है कि वह अनुगामिनी है, सहायिका है पिता भगवान है, पति परमेश्वर है और पुत्र के प्रति उसके कर्तव्य है पर बुद्धिजीवियों द्वारा निर्मित धर्म

ये नहीं बताता कि वह खुद के लिए क्या है? उसके लिए कौन है। और जब स्त्री शोषण के खिलाफ 'स्त्री–विमर्श' जगा तो वह बजाय कि एक स्वर में समस्याओं का सही हल ढूढ़ता, एक वर्ग स्त्रियों को ही विरोधी बनाने लगा और दूसरे वर्ग का स्वर उचित तो था, पर वह इतना मद्धिम था कि दबा सा रह गया। उपभोक्तावादी संस्कृति, भौतिकतावादी संस्कृति पनपने लगी। स्त्रियों से बाजारवाद ने खूब खेल खेला। उन्हें आजादी के नाम पर, आत्मनिर्भरता के नाम पर उपयोग की वस्तु में धीरे–धीरे कब परिवर्तित कर दिया पता नहीं चला। आज पैसे के लालच में स्त्रियों से प्रोडक्ट के प्रचार–प्रसार के लिए खुले रूप में अंग–प्रदर्श करवाया जा रहा है। देश में ही नही विदेशों में तक यहाँ की स्त्रियों का इस्तेमाल हो रहा है। इतना ही नही उसका इस्तमे ाल थोड़–थोड़े दाम पर फिल्मों के भयानक रेप सीनों में भी हो रहे है और कुछ हुआ तो या न हुआ तो पर पश्चिमी प्रदूषित हवा से प्रदूषित 'स्त्री–विमर्श' ने इतना तो कर ही दिया है कि घरों से स्त्रियों को निकाल कर बाजारवादी–संस्कृति को चंगुल में फंसा दिया है। समाज में हो रही गतिविधियों, विसंगतियों का पूरा–पूरा प्रभाव साहित्य पर पड़ता ही है। आचार्य रामचन्द्र शुल्क कहते भी है– 'साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है।' वास्तव में साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब ही है। गद्यविद्या कहानी विशेष रूप से उभरी है। सन् साठ के बाद की कहानियाँ सामाजिक यथार्थ के बहुत निकट आ पहुँची हैं। आज समाज में जिस प्रकार से अजनबी संस्कृति विकसित होती जा रही है, प्रगति की अंधी दौड़ में सम्बन्ध टूटते जा रहे हैं। दूरियाँ बढ़ी हैं, अपराध बढ़े हैं, शोषण के नये रूप विकसित हुए हैं उन सभी का प्रामाणिक दस्तावेज है, समकालीन कहानियाँ। समकालीन कहानियों में स्त्री–विमर्श वृहद् स्तर पर हुआ है, और हो भी रहा है। स्त्रियों के विविध रूपों पर तो बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं पर विशेषकर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर ज्यादातर समकालीन कहानियाँ सामने आई है। 'विरोध पत्र', 'नसीमा बनाम मसाजवाली', 'सीढ़ियों का बाजार', 'राख', 'डैफोडिल जल रहे हैं', 'खूनी भेड़िए', 'बोल री कठपुतली', 'वापसी', 'टूटना', 'परिंदे', 'खोई हुई दिशाएं', 'मित्रो मरजानी', 'बादलों के घेरे में', 'अपने–अपने छेद', 'एक काली एक सफेद', 'गाँठ', 'एक और निश्चय', 'एक प्लेट सैलाब', 'सुहागिने' आदि कई कहानियाँ स्त्री–पुरुष सम्बन्धों पर लिखीं गई है। क्योंकि आज समाज में सबसे प्रमुख एवं विद्रूप सम्बन्धी स्त्री–पुरुष का ही होता जा रहा है। आज परिवार संयुक्त नहीं रह गये हैं। ऐसे में स्त्री–पुरुष सम्बन्ध पर ही परिवार चल भी रहे हैं और डगमगा भी रहे हैं।

स्त्री–पुरुष सम्बन्धो, स्त्री मनोविज्ञान एवं स्त्री स्वातंत्र्य पर लिखी गई समकालीन कहानियाँ स्त्री की आधुनिक समस्याओं को उठाने के सार्थक प्रयास में लगी हुई है। आज प्रेम, विवाह एवं सेक्स प्रमुख रूप से और परिवर्तित रूप में आ रहे हैं। प्रेम की पवित्रता और देह की शुचिता धूमिल पड़ने लगी है। घर की चाहदीवारी

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

से बाहर निकली स्त्री जहाँ एक ओर स्त्री–स्वातंत्र्य का उद्घोष कर रही है, वहीं दूसरी ओर समस्याओं से भी घिरती जा रही है। समकालीन कहानीकारों ने कहानियों में स्त्री–विमर्श तो किया है पर उनमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव के लिए भी भरपूर स्पेस रखा है। रति सम्बन्धों पर खुल्लम–खुल्ला ही नहीं उसके दृश्य चित्रों जैसा चित्रांकन तक धड़ल्ले से कर डाला है। स्त्रियों के आध र निक रूप की जगह पाश्चात्य रूप का अंकन किया है। स्त्री–विमर्श के नाम पर कुछ स्वयं ज्ञान नही। भेडचाल में कहानीकार इतनी रददी कहानियाँ इस मान्यता पर परोस रहे हैं कि आज की ये मांग है जबकि पाठक कभी भी मांगता नहीं, पाठक स्वयं कहानीकार अपनी विशिष्टता से तैयार करता है। यदि ऐसा न होता तो प्रेमचन्द जैसा कहानीकार नहीं आता। श्रेष्ठ कहानीकार कभी वो नहीं लिखते जो कहा जाता है क्योंकि कहा हुआ लिखने का मतलब किसी के लिए मजदूरी करना होता है और कहानीकार तो अपना अनुभूत सत्य समाज के सामने रखता है, जिसे उत्कृष्टता की कसौटी पर पाठक वर्ग स्वीकार या अस्वीकार करता है। अतः कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि समकालीन कहानियों में हो रहा है 'स्त्री–विमर्श' बहुत हद तक दिशा भटकता जा रहा है। कहानीकारों को स्वयं जानने समझने की आवश्यकता है कि स्त्री–विमर्श न तो कोई हवा का झोंका है, न ही फैशन और न ही ट्रम्प कार्ड। यह स्त्री सन्दर्भित उस सच्चाई को लेकर चला है जिसे हम लम्बे समय से नकारते आ रहे थे। जिसे अस्वीकार कर पुरुष वर्ग अपने ही पैरो पर स्वयं ही कुल्हाड़ी मारता आया है। जिसे अब समझकर स्वीकारने की आवश्यकता है। स्त्रियों को सम्मानपूर्ण समानता देने की आवश्यकता है। सही मायने में यही सच्चा भारतीय 'स्त्री–विमर्श' है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. चन्द्रभूषण तिवारी 'समकालीन कहानीः दिशा और दृष्टि' सपा. धनंजय वर्मा,
2. डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन सिद्धान्त और साहित्य,
3. अशोक वाजपेयीः नये की प्रतिष्ठा और पुराने का सवाल।
4. रवीन्द्र भ्रमर, समकालीन हिन्दी कविता,